रामदेव त्रिपाठी

उषा किरण खान

संस्कृति का कालपात्र-बिहार

मूल्य चार रुपये मात्र

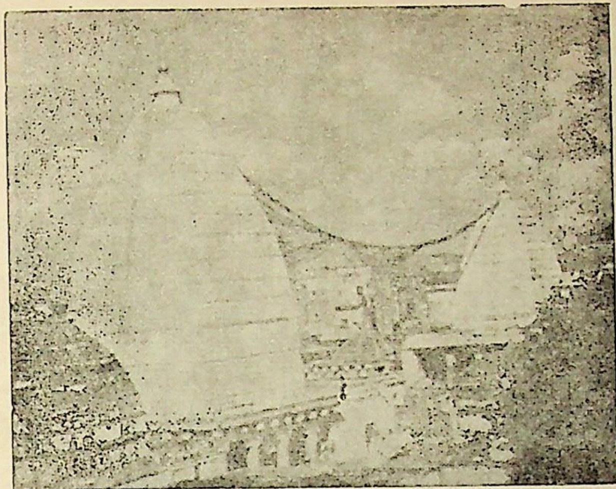
परिवर्धित संस्करण १९८२

प्रकाशक : सुजाता प्रकाशन
कामता सदन : बोरिंग रोड : पटना–१

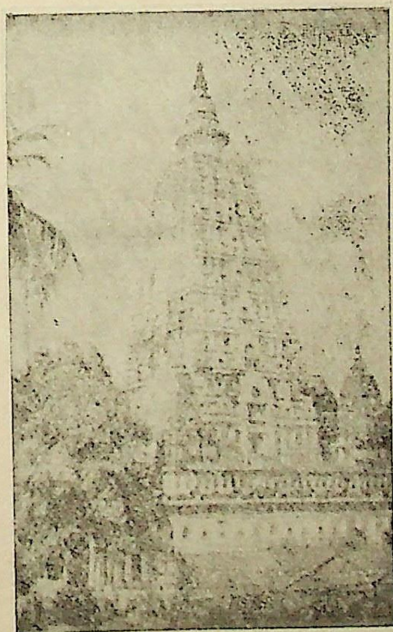
मुद्रक :
श्री माहेश्वरी प्रेस
गोलघर, वाराणसी-221001

विषय-क्रम

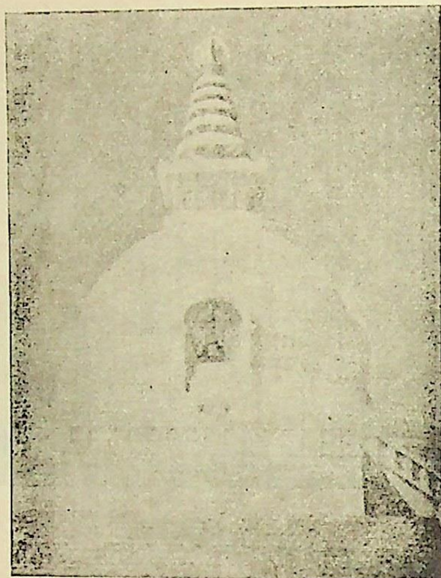
'विश्वदेवता का शृंगार-यह बिहार है।
भारत माता का गलहार-यह बिहार है।'



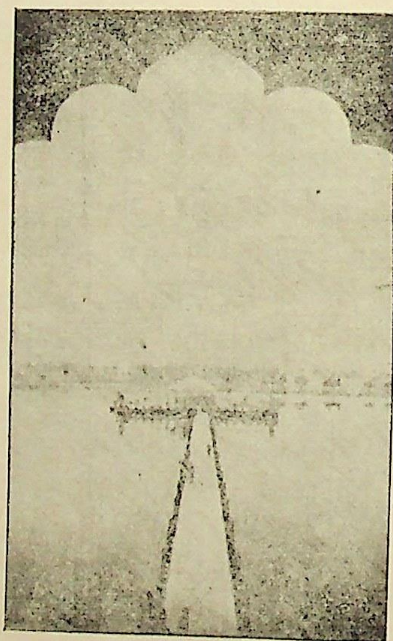
वैद्यनाथ धाम



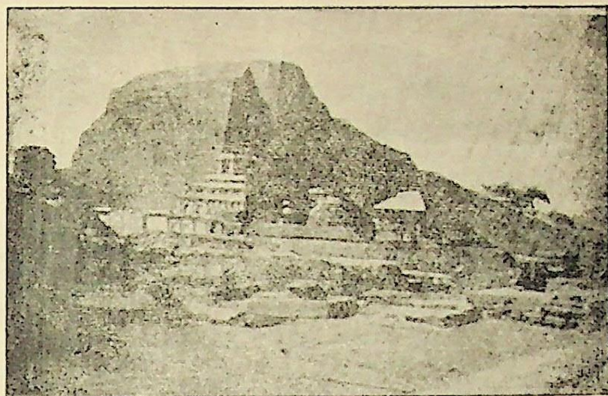
बोधगया



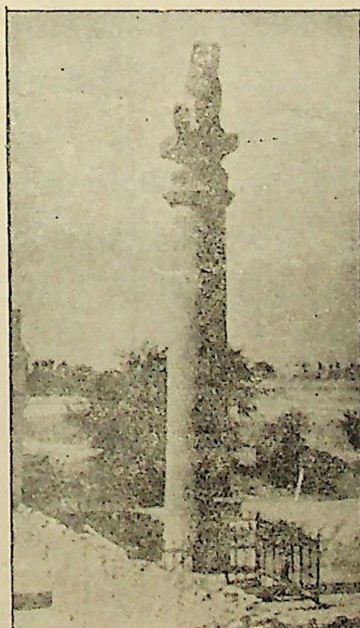
विश्व शांति स्तूप



पावापुरी



नालन्दा का अवशेष



अशोक स्तंभ

बिहार के गले में मोतियों का हार-मोतिहारी

विष्णु पुराण तथा अन्य कई पुराणों में लिखा है कि शालग्रामी या नारायणी (गंडक) नदी के किनारे चम्पारण्य फैला हुआ था। वहाँ ऋषि-मुनि गम्भीर अध्ययन और तपस्या में समय व्यतीत करते थे। इस पूरे क्षेत्र का सम्बन्ध अनेक प्राचीन ऋषियों से बताया जाता है। कहते हैं कि दूहो-सूहो का नाम पुराण-प्रसिद्ध राजा उत्तानपाद की दो रानियों सुरुचि और सुनीति के कथित दूसरे नाम दुरानी और सुरानी पर पड़ा। कहा जाता है कि उत्तानपाद के पुत्र सुप्रसिद्ध ध्रुव यहीं कहीं तपस्या करते थे। वर्तमान संग्रामपुर को वाल्मीकि ऋषि का आश्रम-स्थल बताया जाता है। कहा जाता है कि इसी स्थान पर रामचन्द्र का अपने पुत्र लव-कुश से संग्राम हुआ था। इस प्रकार अनेक किंवदन्तियाँ हैं। इन किंवदन्तियों के अलावा वैदिक साहित्य से भी पता चलता है कि प्राचीन काल से ही यह आर्यों का निवास-स्थल रहा। पंजाब से चलने वाले विदेहवंशी आर्य मिथिला से पहले गंडक के किनारे ही बसे थे। इन लोगों ने एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की थी। कुछ समय बाद जनक उनके प्रतापी राजा हुए। कहा जाता है कि उनकी राजधानी जानकीगढ़ में थी जो लौरिया नन्दनगढ़ से ११ मील उत्तर है।

पावन बौद्ध-स्थल

विदेह—राजा के बाद इस ऐतिहासिक भू-भाग में वृज्जियों का गणतन्त्र राज्य कायम हुआ जिसकी राजधानी वैशाली, जो अब अलग जिला है, हुई। कुछ लोगों का कहना है कि मोतिहारी, केसरिया, सिधरांव और लौरिया नन्दनगढ़ में वृज्जियों की विभिन्न जातियों की राजधानियाँ थीं। नन्दनगढ़ में मिट्टी के बहुत से टीले देखने में आते हैं जिनका सम्बन्ध वृज्जियोंसे बताया जाता है, और वहाँ खुदाई का दौर समाप्त नहीं हुआ है, अभी चल ही रहा है। अनुमान किया जाता है कि ये टीले वृज्जि शासकों की समाधियाँ हैं। इनमें से एक पर एक सिक्का पाया गया है जो ईसा से १००० वर्ष पहले का है। यह निश्चित है कि यह स्थान अत्यन्त प्राचीन है। यहाँ गंडक के पूरब बिहार नामक एक स्थान है। कहते हैं कि भगवान बुद्ध जब अपने सारथी चण्डक के साथ घर से चले थे तो इसी स्थान पर उन्होंने अपने वस्त्र-आभूषण उतारकर, केश काटकर संन्यास धारण किया था। इस स्थान के नाम से पता चलता है कि यहाँ पहले बौद्ध बिहार था। वृज्जियों की प्रार्थना पर बुद्ध ज्ञान प्राप्त कर फिर एक बार यहाँ आये थे। यहाँ उन्होंने बहुत से शिष्य बनाये। अन्तिम बार वैशाली से कुशी नगर जाते हुए बुद्ध भगवान चम्पारण जिला होकर ही गये थे। लौरिया नन्दनगढ़ या उसी के पास कहीं उनकी चिता के भस्म पर स्तूप बनाया गया था। छठीं सदी में इस भू-भाग पर मगध का आधिपत्य आ गया था, फिर वज्जियों का शासन चलता रहा था। ईसा के करीब चार सौ बरस पूर्व यह भाग मौर्य साम्राज्य के अन्दर आया।

चम्पारण के अन्दर इस वंश के स्मृति-चिह्न अशोक स्तम्भों के रूप में अब भी मौजूद है। अपने शासन के २१वें वर्ष में जब अशोक भगवान बुद्ध के पवित्र स्थानों का दर्शन करने निकले थे तभी यह निर्माण कार्य कराया था। भगवान बुद्ध ने जिस रास्ते से अपनी अन्तिम यात्रा की थी उसी रास्ते से अशोक ने यात्रा की और उसी रास्ते में लौरिया नन्दन-गढ़, लौरिया, अरेराज और रमपुरवा में स्तम्भ खड़े हैं तथा केसरिया में स्तूप हैं।

चीनी यात्री फाहियान ने इसी सड़क से यात्रा की थी। करीब ४०० ई० में उसने उस स्थानको देखा जहाँ बुद्ध ने राजसी वस्त्राभूषण उतारे थे। इसके पश्चात् वह अशोक-स्तूप देखने गया और वहाँ से कुशी नगर जाकर वैशाली लौट आया। इसके बाद इस भू-भाग का जिक्र छठीं सदी के आरम्भ में आये हुए दूसरे यात्री सुंगयून के यात्रा-विवरण में मिलता है। तीसरे चीनी यात्री हुएनसांग ने तो यहाँ का विस्तृत विवरण लिखा है। वह सातवीं सदी के मध्य में लुम्बिनी वन से कुशीनारा जाते समय चम्पारण गया था। पहले पहल उसने इसी जिले में बुद्ध के संन्यास ग्रहण करने का स्थान देखा जहाँ पीछे अशोक ने स्तूप बनवाया था। उसने कहा है कि यह स्थान बहुत दिनों से उजाड़ हो गया है। शहर वीरान हो गया है। यहाँ से वह दक्षिण-पूर्व की ओर उजाड़ स्थान होकर बुद्ध की चिता के भस्म पर बने हुए स्तूप के पास गया, जहाँ एक बौद्ध विहार और अशोक निर्मित एक दूसरा स्तूप था। यह अशोक स्तूप भग्नावस्था में भी करीब १०० फीट ऊँचा था। यहाँ से वह उत्तर-पूरब

की ओर घने जंगल से होकर कुसीनारा की ओर गया। हर्षवर्धन शिलादित्य के हाथों से गुजरते हुए यह स्थान ९वीं सदी में पालवंश के हाथों में पड़ा। १०वीं सदी में जेजामुक्ति के राजा यशोवर्मन चंडेल ने इसे जीता ११वीं सदी में चंदि के कलचुरी राजा ने इस पर अधिकार किया। ११वीं सदी के अन्त में सेनवंशियों के हाथों में यह महत्वपूर्ण स्थान चला गया।

१३वीं सदी के आरम्भ में सम्पूर्ण बिहार पर मुसलमान शासकों ने आधिपत्य कर लिया। लेकिन गंगा के उत्तर में उनका अधिपत्य कुछ देरसे जमा। छोटे-मोटे युद्धोंकी आंशिक सफलताके बाद १३२३ में तुगलक शाहने आक्रमण कर इस भूभाग की स्वतन्त्रता छीन ली। उसके पहले सिमरांव राज-वंश के संस्थापक कर्नाटकके नान्यदेव आकर यहाँ बसे थे। उन्होंने सम्पूर्ण मिथिलाको जीतकर नेपालमें भी पैर जमाया था। उनके पुत्र गंगादेवने पहले पहल लगानके लिए कायम किया था। नरसिंह देव गंगादेवके बाद राजा हुआ। परगना उसके समयमें ही नेपाल मिथिला राज्य से अलग हो गया।

प्रमुख नगर

मोतिहारी

मोतिहारी प्रमुख नगर है। यह एक जलाशयके किनारे बसा हुआ है जिसका गंडक नदीसे सम्बन्ध है। ये जलाशय शहरके लिए मोतीके हारके समान हैं इसलिए इसका नाम मोतिहारी पड़ा है। केसरिया चीनी यात्री हुएनसांगने लिखा

कि वैशालीसे ३० मील उत्तर-पश्चिम एक पुराना शहर है जो काफी दिनों से उजाड़ था। भगवान बुद्ध ने कहा कि यहाँ मैंने चक्रवर्ती राजा होकर बहुत दिनों तक राज्य किया था। बौद्धों ने उसी शासन की यादगारी में स्तूप बनवाया जिसकी ऊँचाई ३२ फीट और नीचे का घेरा १४०० फीट है। इस टीले को लोग चक्रवर्ती राजा बेनका देवरा कहते हैं। पास के दूसरे टीले को रनिवास भग्नावशेष बताते हैं। रनिवास के टीले को बौद्ध मत की सम्पुष्टि को तब आधार मिल गया जब १८६८ ई० में यहाँ खुदाई हुई और एक मंदिर बुद्ध की मूर्ति सहित मिला।

लौरिया अरेराज

यहाँ ईसा से २४९ वर्ष पहले का एक अशोक स्तम्भ है। यह स्तम्भ साढ़े छत्तीस फीट ऊँचा है। इसके आधार का व्यास ४१·८ इंच का है। और चोटी का व्यास ३७·६ इंच का है। अनुमानतः ऊपर एक जानवर की मूर्ति रही होगी। उसपर का अभिलेख स्पष्ट है। यहाँ के लोग इस स्तम्भ को लौर (लाठी) कहते हैं। पासही एक महादेव का मंदिर है जहाँ हर वर्ष मेला लगता है।

सगरडीह

इस स्थान का सम्बन्ध राजा सगर से जोड़ा जाता है। एक टीला है जिसे सगरगढ़ कहते हैं, एक तालाब है जिसे बौद्ध तालाब कहते हैं और एक दरगाह है जिसे गुलाम हुसैन शाह की दरगाह कहते हैं।

सिमराँव

यहाँ सुप्रसिद्ध सिमराँव राजवंश महल था जिसका भग्नावशेष है। यह नेपाल की सीमा के अन्दर पड़ गया है।

सीताकुंड

इस नाम के कुंड एक ही कथा को अपने अंग में समेटे कई स्थानों पर हैं। कहते हैं कि यहाँ सीताजी ने स्नान किया था। प्रत्येक रामनवमी को मेला लगता है।

वैदिक और पौराणिक अवतारों की कथाएँ, बुद्ध की गाथाएँ, मुसलमानों की स्मृद्धि, घात-प्रतिघात की चर्चाएँ अपने सीने में खाये जो बिहार खड़ा है, साबुत बचा है उसके इतिहास में इस स्थान मोतिहारी का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है।

चम्पकारण्य ही चम्पारण के नाम से प्रसिद्ध हुआ भू-भाग है और मोतिहारी उसका केन्द्र है।



सीताका पवित्र वनवास क्षेत्र--बेतिया

एक स्वाभिमानिनी भारतीय नारीने राज्याश्रय छोड़ वनगमन किया था। वनमें उसने राजपुत्रको जन्म दिया और उसे राज्योचित शिक्षा दी। प्राचीन गाथाओं में इस प्रकार की और भी कई नारियाँ हैं किन्तु सीता का स्थान सर्वोपरि है। सीताका स्थान बिहार के लिए विशेष रूपसे गौरवप्रद है।

त्रिवेणी नहर का मुख्य स्थान भैंसालोटन सीता के वन निवास स्थल के रूप के भी ख्यात है, यह शायद ही सभी लोगों को ज्ञात हो। इसी स्थान पर सीता रहती थीं। अपने पुत्रों—लव और कुशको शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा दी और उसका फल भी देखा। राम की सेना अश्वमेध यज्ञ के घोड़े के साथ दिग्विजय को निकली थी। लव और कुशने घोड़े को रोक लिया। राम की सेना ही नहीं, स्वयं राम ने भी अपने पुत्रों के हाथों मात खायी। सीता ने खड़ी-खड़ी सारा युद्ध देखा। युद्ध में उन्माद नहीं था, वीरोचित उन्मेष था। यही वह ऐतिहासिक स्थल था जहाँ सीता ने अपने पुत्र-का उनका पिता दिया, पिता को उनका वारिस दिया। और वह गौरव-शाली स्थान अब भी अपनी गरिमा के साथ नये कलेवर में उपस्थित है।

अब उस पूरी भूमिका भौगोलिक और ऐतिहासिक विवरण जान लेना श्रेयस्कर होगा।

बेतिया में चम्पारण की तरह ही अशोक-स्तम्भ है। १४ मील उत्तर-पश्चिम एक गाँव है लौरियानन्दगढ़। एक स्तूप का भग्नावशेष और कुछ पुरानी समाधियों के टीले हैं। स्तम्भ-दण्ड ३२ फीट और साढ़े ९ इञ्च लम्बा है। इसके आधार पर का व्यास ३५.५ इंच और चोटी पर का व्यास २६.२ इंच का है। इसका कलश ६ फीट १० इंच लम्बा है। कलंगों पर दाना चुगते हुए राजहंस की पंक्ति चित्रित है। ऊपर सिंह की मूर्ति खड़ी है। सिंह का मुँह कुछ टूटा हुआ है और स्तम्भ-दण्ड पर ऊपर से तोप के गोले की निशानी है। इस पर १६६०-६१ ई० का लिखा औरंगजेब का नाम भी है। फारसी अक्षरों में साफ लिखा है—महिउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब बादशाह आलमगीर गाजी सन् १०६१। बरबरा और अरेराज के स्तम्भ से यह स्तम्भ बहुत पतला और हल्का है। इस पर अशोक के लेख वैसे ही हैं जैसे अरेराज के स्तम्भ पर। नागरी अक्षर में भी सम्वत् १५६६ में इस पर कुछ लिखा गया था। एक जगह लिखा है नृपनारायण सुत अमरसिंह। इसकी तारीख नहीं दी हुई है। अंग्रेजी में १६९२ का लिखा एक अंग्रेज का नाम है।

रामपुरवा में भी ठीक लौरियानन्दगढ़ की तरह का स्तम्भ है। इसके सिरोभाग पर सिंह की मूर्ति अलग हो चुकी है, उसका केवल पैर दिखायी देता है। इसके आसपास भी बौद्धकालीन टीले हैं। इन स्तम्भों को शिवलिंग समझकर भी पूजा जाता है।

त्रिवेणी घाट

गंडक, पंचनद और सोनाह नदी का संगम-स्थल त्रिवेणी-घाट कहलाता है, उस पर नेपाल में इसी नाम का नगर है। हिन्दू इसे पवित्र स्थल मानते हैं। वैसे हरिहर क्षेत्र के लोग गजग्राह की पौराणिक लड़ाई का स्थल मानते हैं, लेकिन श्रीमद्भागवत के अनुसार त्रिवेणी में ही इसका होना अधिक सम्भव जान पड़ता है। यहाँ माघ संक्रान्ति पर्व के अवसर पर मेला लगता है। इस स्थान पर सीताजी का एक मंदिर है। कहते हैं कि इसी स्थान से सीताजी ने लव-कुश को राम से युद्ध करते देखा था। यह स्थान अब भैंसालोटन के नाम से अधिक प्रसिद्ध है।

जानकीगढ़

रामनगर रेलवे-स्टेशन से ६ मील पूरब जानकीगढ़ एक गाँव है। यहाँ एक टीला है जिसे जानकीगढ़ कहते हैं। कहा जाता है कि यह किला राजा जनक का बनाया हुआ था। कुछ लोगों के अनुसार यहाँ लौरियानन्दगढ़ के राजा का तान्त्रिक नामक पुरोहित रहता था। कहते हैं कि राजा और पुरोहित अपने-अपने किले के ऊँचे स्तम्भ पर दीपक जलाये रहते थे जिससे एक-दूसरे का कुशल-क्षेम मिलता रहे।

त्रिवेणी से ५ मील दूर दरवाबारी नामक एक गाँव है। दरवाबारी का अर्थ महल का द्वार है। इस गाँव के उत्तर ५२ गढ़ और ५३ बाजार के भग्नावशेष हैं। इसी को बावनगढ़ी और तिरपन बाजार कहते हैं। स्मिथ साहब ने

इसे रामग्राम अनुमान किया था जिसे चीनीयात्री फाहियान और हुएनसांग ने देखा था। कुछ लोग इसका सम्बन्ध पाण्डव के वनवास से लगाते हैं और कुछ लोग इसे सरदार बाजौर का, जो सियरांव राजहंस से सम्बन्धित है, स्थान समझते हैं।

सोमेश्वर

सोमेश्वर पहाड़ी के ऊपर एक किला है। १८१४ ई० में नेपाल युद्ध के समय यहाँ अंग्रेजी सेना रहती थी। यहाँ से गौरीशंकर, धौलागिरि आदि की चोटियाँ साफ नजर आती हैं।



बाबा वैद्यनाथ के चरणों में

आषाढ़ बीतते ही श्रावण का सुहाना महीना आ जाता है। सावन अनेक रस-रंगों से भरपूर महीना है। अनेक कोणों से रस-रंग की वर्षा होने लगती है। सावन की झीसीं के साथ-साथ धर्मचेता नागरिकों का उछाह भी देखते ही बनता है। सावन शिव-पूजन का विशेष मास है। बिहार में लोग, विशेषकर स्त्रियाँ, श्रावणी सोमवारी करती हैं। शिवको बेलपत्र 'राम' लिखकर समर्पित करती हैं। सबसे निराली छटा होती है वैद्यनाथ धाम के यात्रियों की। कुछ यात्री सीधे ट्रेन-बस से यात्रा करते हैं, बाकी काँधेपर कांवर रखकर जल ढारने के लिए पैदल यात्रा करते हैं। क्या राजा, क्या रंक सभी नंगे पांव, धूप हो या वर्षा, काँधे पर काँवर लिये 'बोल बम' की टेर लगाते चलते होते हैं। उनका कष्ट बाबा के प्रांगण में जाकर दूर हो जाता है। सम्पूर्ण भारत से लोग इस यात्रा पर आते हैं।

पुराणों में कहा गया है कि त्रेता युग में लंका का राजा रावण शिवका परम भक्त था। उसकी भक्ति की पराकाष्ठा तब हो गयी थी जब उसने अपना सिर काटकर शिव के चरणों में समर्पित कर दिया था। कहते हैं कि उसने दस बार सिर काटकर शिव के चरणों में समर्पित किया, इसलिए शिव ने उसे दस सिर प्रदान किये और वह दशानन कहलाया। शिव ताण्डव स्तोत्र का रचयिता रावण शिव से निकट रहना चाहता था। किन्तु कहाँ शिव का निवास

कैलाश पर्वत पर धुर उत्तर में और कहाँ रावण नगरी लंका सुदूर दक्षिण में। भोले शिव ने फिर भी उसके साथ जाना स्वीकार कर लिया। शिवजी स्वयं अपने भक्त से शंकित थे कि उनको लंका नगरी में रखकर भी रावण अपने दुष्कर्मों से पृथक नहीं होगा। इस संभावना को ध्यान में रखते हुए उन्होंने शर्त रखी कि शिवलिंग को रावण कहीं धरती पर न रखे। अगर कहीं रखेगा तो जहाँ रखेगा लिंग वहीं स्थापित हो जायगा। देवतागण तो भयभीत थे ही। उन्होंने उपाय सोचना शुरू किया। वरुण देवता रावण के पेट में प्रवेश कर गये। रावण को लघुशंका लगी। वह देवघर में आकाश से धरती पर उतरा। उसे वहाँ एक बटोही ब्राह्मण दिखायी पड़ा। उसने शिवलिंग ब्राह्मण से हाथों में तब तक रखे रहने को कहा जब तक वह लघुशंका से निवृत न हो जाए किन्तु रावण की लघुशंकाकोई साधारण तो थी नहीं, साक्षात वरुण ही उदर में थे। थोड़ी देर बाद ब्राह्मण ने लिंग धरती पर रख दिया और गायब हो गया। रावण की लघुशंका मिटी, उसने लिंग उखाड़ना चाहा पर संभव न हुआ। कहते हैं कि रावण अन्त में क्रोध कर बैठा और लिगाधार पर एक मुक्का मारा जिससे लिंग तिरछा हो गया। वैद्यनाथ धाम का लिंग आज भी तिरछा ही है। यह ज्योतिर्लिंग बारह में से एक माना जाता है। यह इस स्त्रोत से सिद्ध होता है

पूर्वोत्तरे प्रज्वलिकानिधाने सदा बसन्तम् गिरिजा समेतम्
सुरा सुराराधित पादपद्मं श्री वैद्यनाथ तमहं नमामि।

कुछ लोग सत्ययुग से ही वैद्यनाथ महादेव का वहाँ रहना बताते हैं। कहते हैं कि दक्षयज्ञ में मरी हुई सीता की देह को जब शिव जी कंधे पर लिये फिरते थे तो विष्णु ने चक्र से उस देह को खंड-खंडकर दिया था जो ५२ स्थानों में जा गिरे थे। कलेजे का भाग यहीं गिरा हुआ बताया जाता है। लेकिन इसके स्मारक स्वरूप यहाँ कोई मन्दिर नहीं है। वैद्यनाथ जी के मन्दिर के एक शिलालेख से मालूम पड़ता है कि इस मन्दिर को सन् १५९६ में गिद्धौर के राजा पूरनमल ने बनवाया था। लेकिन कहा जाता है कि पूरन-मल ने सिर्फ उसकी मरम्मत करवायी थी। मन्दिर के मुख्य फाटक पर चन्द्रकूप नामका एक कुआँ है जिसमें पृथ्वी पर के सभी तीर्थों का जल होना माना जाता है।

शिवगंगा नामक जलाशय और कर्मनाशा नामक धारा यहाँ की दर्शनीय वस्तुओं में एक है। रावण के उदर से निकले वरुण देवता ही कर्मनाशा के रूप में विराजमान हैं, ऐसा माना जाता है।

सभी देवताओं का निवास देवघर माना जाता है, यही इस नाम का औचित्य है। कहते हैं बैजू नामक एक भक्त के नाम पर यहाँ के महादेव का नाम बैजनाथ या वैद्यनाथ पड़ा। यहाँ बैजू की समाधि भी बतायी जाती है जो केवल २०० वर्ष की पुरानी मालूम पड़ती है। एक ही प्रांगण में शिव और पार्वती दोनों का मन्दिर है।

वैसे तो वर्ष भर यह मन्दिर अपार भीड़ से भरा होता है किन्तु सावन में छटा ही और होती है।

सुलतानगंज की गंगा मैया का जल लेकर भक्तगण चल रहे होंगे। राहगीरों के लिए सन्तालों के बच्चे साल के पत्ते तोड़-तोड़कर राहों में बिछा रहे होंगे और एक ही टेर सुनाई दे रही होगी।

बोले बम ! बोले बम !! बोले बम !!!



सहरसा का प्रमुख आकर्षण-सिंहेश्वर स्थान

बाराह पुराण में लिखा है कि सृष्टि के आदि काल में एक बार शिव ने बाराह का रूप धारण किया। देवता लोग उन्हें पकड़ने के लिए दौड़े। इन्द्र ने उनके शृंग का अग्र भाग, ब्रह्मा ने मध्य भाग और विष्णु ने मूल भाग पकड़ा। शृंग के तीनों भाग तीनों के हाथ में रह गये और शिवजी लुप्त हो गये। आकाशवाणी हुई कि अब आप लोग शृंग से ही सन्तोष करें। मुझे आप लोग नहीं पा सकते। विष्णु ने अपने हाथ के शृंग को वहीं स्थापित कर दिया। उसका नाम शृंगेश्वर पड़ा। शृंगेश्वर से ही अब सिंहेश्वर शब्द बना है। सिंहेश्वरनाथ महादेव का जहाँ मन्दिर है वह स्थल सहरसा जिले के मधेपुरा नामक स्थान से ६ मील उत्तर है। शिवरात्रि के समय यहाँ विराट मेला लगता है जहाँ दूर-दूर के लोग आते हैं। आस-पास के तथा दूर के धर्म प्राण जन बाबा सिंहेश्वर के दर्शनार्थ यहाँ आते हैं, लेकिन यह एक विकसित व्यापारिक केन्द्र के रूप में भी प्रसिद्ध हो गया है। सोनपुर के मेले की तरह यहाँ भी हाथी, घोड़ी, घोड़े, गाय, बैलों का मेला लगता है। अनेक प्रकार के नाच, तमाशे, सर्कस-सिनेमा, सरकारी प्रचार माध्यमों के द्वारा दिखाये जाने वाले सुधारवादी तमाशे इसमें प्रमुख आकर्षण हैं। सिंहेश्वर स्थान के आस-पास का इलाका अत्यन्त पिछड़ा हुआ है। बिजली, सड़क और कोई बाजार यहाँ आस-पास में नहीं है। सौ वर्ष भर इस इलाके के किसान सिंहेश्वर

मेले की प्रतीक्षा करते रहते हैं तथा मेले के बाद उनके पास जुगाली करने को रंगीन तमाशों के किस्से भरे पड़े होते है।

सहरसा जिले में अनेक इतिहास और पुराण प्रसिद्ध स्थल हैं। इन्हीं में से एक उल्लेखनीय है महिषी या माहिष्मती— यही वह स्थल है जहाँ सुप्रसिद्ध पण्डित मंडन मिश्र रहा करते थे। उनकी पत्नी सरस्वती (भारती) ने शंकराचार्य को निरुत्तर कर दिया था। महिषी में प्रसिद्ध उग्रतारादेवी का स्थल है। यह देवी बड़ी ही जाग्रत है। दुर्गाष्टमी के अवसर पर वहाँ बलि पड़ती है, रक्त की धारा बह निकलती है। यह स्थान उपपीठ कहलाता है। कथन है कि सती के मृत शरीर को लेकर जब शिव घूम रहे थे तो विष्णुचक्र से ५२ स्थानों पर सती के मुख्य-मुख्य अंग कटकर गिरे जो पीठ स्थान कहलाये और २४ स्थान पर छोटे-छोटे अंग गिरे जो उपपीठ कहलाये। यह उनमें से एक है। इसी के पास गोरही घाट के पूरब दुर्वासा ऋषि का आश्रम बतलाया जाता है और आधुनिक काल में हिन्दी के प्रसिद्ध कवि कलाकार श्री राजकमल चौधरी का जन्म-स्थान भी यही उर्वर गाँव है।

बराटपुर

सहरसा में इसी आसपास में यह एक प्रसिद्ध गाँव है। यहाँ एक पुराने किले के चिह्न हैं जो महाभारत के प्रसिद्ध राजा विराट का समझा जाता है। अज्ञातवास के समय पाण्डव उसी स्थान पर छिपे थे, ऐसा समझा जाता है।

सहरसा मधेपुरा में सडामा गाँव है। इसी गाँव में बौद्ध-जैनधर्म के प्रबल विरोधी सुप्रसिद्ध विद्वान उदयनाचार्य हुए थे।

विद्वानों और प्रसिद्ध बौद्धों को इस भूमि में कोसी नदी का लम्बे युग तक बड़ा प्रकोप था। कोसी बाँध से इस जिले को काफी राहत पहुँची लेकिन साथ ही साथ वह प्रकोप उधर से खिसक कर पार्श्ववर्ती क्षेत्रों में चला गया।



पावन शक्तिपीठ-चण्डीस्थान

गंगा के दक्षिणी तट पर अवस्थित बड़े और ऐतिहासिक नगरों की परम्परा में मुंगेर एक रत्न से कम नहीं है। मुंगेर में अब तक शोध से ज्ञात उल्लेखनीय स्थान ही कम नहीं हैं और अज्ञातका तो अनुसन्धान ही बाकी है। सम्पूर्ण मुंगेर टीलों, ढूहों और छोटी-छोटी ऐसी पहाड़ियों से भरा पड़ा है जिनके गर्भ में अनेक सभ्यताएँ और संस्कृतियाँ दबी पड़ी हैं। किंवदन्तियों और लोकोक्तियों का कहना ही क्या। अनेक गाथाओं में से एक गाथा मुंगेर के चण्डीस्थान के सम्बन्ध में भी प्रचलित है। चण्डीस्थान मुंगेर के उत्तर-पूर्व कोने में गंगा के किनारे प्रसिद्ध शक्तिपीठ के रूप में अवस्थित है।

एक बार कैलाश-पर्वत पर भगवान शंकर और उनकी पत्नी सती बैठे हुए थे। वहीं से अनेक देवी-देवता किसी समारोह में जा रहे थे। सहज जिज्ञासु सती ने पूछ ही लिया कि वे कहाँ जा रहे हैं। देवताओं द्वारा यह बताने पर कि वे सती के पिता दक्ष के यहाँ यज्ञ में निमन्त्रित हैं, सती मचल गई। उन्होंने अपने पति शंकर से कहा—"मैं भी पिता के यहाँ यज्ञ में जाऊँगी।" शंकर ने बार-बार उन्हें मना किया कि बिना बुलाये पिता के यहाँ, वह भी समारोह में, नहीं जाना चाहिए। किन्तु सती ने तो मन ही मन कुछ ठान ही लिया था। आखिर वह यज्ञ में चली ही गई। शिव ने उनके साथ कुछ अपने विशेष अनुचरों को लगा दिया।

वहाँ सती ने जाते ही यज्ञशाला में खड़ी होकर अपने पिता

से शिव की उपेक्षा का कारण पूछा। अहंकारी दक्ष ने हँसी उड़ाते हुए कहा—"श्मशान में रहने वाले अघोरी शिव को यज्ञशाला में कैसे बैठने दे सकता हूँ।"

अपमानवश सती ने अपने आपको यज्ञवेदी में झोंक दिया, आत्मदाह कर लिया। शिव को तुरन्त अपने अनुचरों द्वारा सूचना मिल गई। शिव ने विकराल रूप धारण कर लिया। सती के शव को काँधे पर उठा शिव ने ताण्डव प्रारम्भ कर दिया। कहते हैं कि ताण्डव के फलस्वरूप सती के अंग-उपांग विभिन्न स्थानों पर गिरे। अब तो अंग अथवा उपांग विशेष गिरने के स्थान पर शक्तिपीठिका बन गई और उसका विधिवत पूजन होता है। मुंगेर का चण्डी स्थान भी इसीलिए पूजा जाता है। वहाँ देवी की आँख गिरी थी। एक छोटी-सी गुफा में देवी की आँख मात्र है। भक्तों का मेला अहर्निश लगा रहता है। यहाँ बलि देने का भी विधान है। दुर्गा पूजनोत्सव में अद्‌भुत श्रृंगार की छटा दीखती है। कहते हैं कि देवी अब तक जाग्रत है और लोगों की मनोकामना पूर्ण करती है। किन्तु बलि की शर्त भी है। इस संबंध में राजा कर्ण का उपाख्यान भी प्रस्तुत किया जाता है। मुँगेर नाम लेते ही राजा कर्ण का नाम स्वतः उच्चरित होता है। वैसे अनेक राजे-महाराजों ने मुँगेर के इतिहास में अपनी छाप छोड़ी है किन्तु अत्यधिक किंवदन्तियों के नायक अकेले कर्ण ही हैं। ऐतिहासिक किले के अन्दर एक टीला है जो कर्णचौरा कहलाता है। यह टीला राजा कर्ण का दानस्थल कहलाता है। कहते हैं कि यहाँ राजा कर्ण प्रतिदिन सवा मन

सोना ब्राह्मणों को दान दिया करते थे। फिर गंगा स्नान

कर चण्डी स्थान में जलते हुए तेल के कड़ाहे में कूदकर अपने शरीर का दान कर देते थे। माता चण्डी प्रसन्न होकर उन्हें प्राणदान भी देती और सवा मन सोना भी दे देती जो वे अपने लिए नहीं रखकर दूसरे दिन दान कर देते।

मन्दिर के पीछे एक गोल गुम्बद-सा बना है जिसे लोग उलटी हुई कड़ाही मानते हैं।

एक आधुनिक और समृद्ध नगर मुंगेर का विशेष पुरातात्विक महत्व है, लेकिन वह अब तक खोज के अभाव में सिलसिलेवार इतिहास-परम्परा की दृष्टि से धूमिल ही बना है।



कालपात्र का अवतरण :
अशोक धाम शिवलिंग

मुँगेर जिले का लक्खीसराय अनुमंडल पथरीली पहाड़ियों से घिरा है। काले-काले चिकने पत्थर चारों ओर ढूहों की शक्ल में बिखरे पड़े हैं। छेनी-हथौड़ी वाले शिल्पियों, कलाकारों का मन इस क्षेत्र को देखकर अवश्य ही मचल उठा होगा। इसके प्रमाण हैं मूर्ति कला के वे नायाब नमूने जो बालगुदर, नवगढ़, जयनगर, बिरदावन और शुकौना में प्राप्त हुए हैं।

अभी हाल ही में इस क्षेत्र का 'चौकी' नामक स्थान सुर्खियों में आ गया। अशोक नाम का एक चरवाहा बालक अपने साथियों के साथ गिल्ली-डंडा खेल रहा था। उसे किसी कड़ी चीज का भान हुआ। बालकोचित जिज्ञासा से चरवाहे ने जमीन खोदना शुरू किया तो एक पूरा-का-पूरा शिवलिंग नजर आया। शिवलिंग के नीचे एक डमरू है और वह डमरू एक नाग के फन पर रखा हुआ है। चरवाहे अशोक ने अपना सारा काम छोड़ दिया है और रात-दिन शिवलिंग के पास बना रहता है। वह स्थान अब अशोक धाम नाम से जाना जाता है। काले बैसाल्ट का बना शिवलिंग अब लोगों का ध्यान आकृष्ट करने में सक्षम हुआ है। ऐसा स्पष्ट है कि वहाँ कोई नगरी रही होगी जिसमें मन्दिर भी होगा। पुरानी गंगा और कियुल नदी के संगम पर रजौना नामक स्थान है

जो कि लक्खीसराय रेलवे स्टेशन से दो मील उत्तर-पश्चिम की ओर है। इस स्थान की संक्षिप्त चर्चा ह्वेनसाँग ने अपनी यात्रा-पुस्तिका में की है। उस चर्चा में कहा गया है कि उस स्थान पर एक झील और उसके निकट एक स्तूप था। प्रसिद्ध इतिहासकार कनिंघम ने भी चन्द मूर्तियाँ प्राप्त कीं। मूर्तियाँ हैं हरगौरी, गणेश, चतुर्भुज विष्णु और काली। सभी मूर्तियाँ काले पत्थर की बनी हुई हैं।

इसके पहले कनिंघम साहब ने आंशिकरूप से खुदाई कर एक चौकीदार बनावट वाली नींव खोद निकाली जो कि रजौना से पश्चिम की ओर पड़ता है। यह शिव-मन्दिर माना गया। ७-८वीं शताब्दि का एक अभिलेख भी प्राप्त हुआ। खम्भों पर खुदी कुछ मूर्तियाँ भी मिलीं। इस प्रकार अनेक बौद्ध मूर्तियों के अतिरिक्त अगर शिवलिंग प्राप्त हुआ तो यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं मानना चाहिए। चौकी में प्राप्त विशाल शिवलिंग काले पत्थर का बना हुआ है। यह पाल राजाओं के समय का ज्ञात होता है। पीठिका से इसकी ऊँचाई ५६ सेण्टीमीटर है। नीचे से नापने पर यह ८० से० मी० है। यह काले पत्थर का शिवलिंग 'ब्रह्मसूत्र' प्रकार का है। मकुटागम के अनुसार 'ब्रह्मसूत्र' प्रकार का लिंग ही मनुष्य द्वारा उत्कीर्णित किया जाता है। इस प्रकार के लिंग में भीतर की ओर दो लकीरें खुदी होती हैं। गोलाकार पीठिका में गोलाकार लिंग अवस्थित है। सादी किनारी से युक्त पीठिका ६·८० मीटर की है। किनारी के भीतर १·८० मीटर फैलाव है। बड़ा ही खूबसूरती से पीठिका में जल निकलने का मार्ग बना हुआ है। लिंग की पीठिका अर्घ्य अथवा योनिके नाम से जानी जाती है।

इसके अतिरिक्त असंख्य हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ मुख्य मन्दिर की नींव के पास मिली हैं। उनमें त्रिमूर्त्ति, विष्णु, सूर्य, गणेश, नवग्रह और सप्तमातृ का हैं। चौकी और रजौना ग्राम में वृक्षों के नीचे छोटे-छोटे शिवलिंग प्राप्त हुए। चौकी के शिवलिंग से ३०० गज पूरब वनियाही पोखर के पास छोटा प्राचीन शिव-मन्दिर है। उसके निकट ही एक बड़े से खंडहर के पास अनेक पकी हुई ईंटें छितरायी हुई हैं। छोटे मन्दिर का छोटा लिंग भी मानुष लिंग है। बड़े और छोटे लिंग का सब कुछ एक ही प्रकार का है अर्घ्य पीठिका और ब्रह्मसूत्र चिह्न सभी वैसे तो प्राप्त मूर्तियों एवं साक्ष्यों के आधार पर यहाँ सभी धर्मों के मानने वाले होंगे किन्तु मन्दिर और असंख्य लिंगों के मिलने से साफ यह है कि शिव के प्रति ही समर्पण अधिक रहा होगा।

अनाम शिल्पियों द्वारा निर्मित यह स्थान प्राचीन काल की उन्नत संस्कृति की याद दिलाता है। आजकल भक्तों की भीड़ से उद्घोषित यह स्थान पुनः धन्य हो रहा है और पुरातत्वविदों की प्रतिक्षा में है।



धर्म-समन्वय का गौरव-स्थल राजगृह

प्राचीनकाल में विशेषतः ईसा-पूर्व छठीं शताब्दी में भारतीय राजनीति में मगध का अपना विशेष ऐतिहासिक महत्व रहा है। मगध की ही भूमि पर बड़ी-बड़ी राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक क्रान्तियाँ समय-समय पर होती रही हैं। बौद्ध-धर्म तथा जैन-धर्म का श्रीगणेश यहीं हुआ। नालन्दा तथा विक्रमशिला-जैसे विश्वप्रसिद्ध विश्वविद्यालय यहीं थे। ईसा पूर्व छठीं शताब्दी के सोलह महाधनपदों में मगध, बज्जासंघ, कौशल, काशी, अवन्ती आदि शक्तिशाली जन-पदों में थे। काल क्रमेण मगध सर्वाधिक शक्तिशाली जन-पद के रूप में उभरा। गिरिव्रज–राजगृह इसी मगध की राजधानी था। राजगृह राजगीर के नाम से नालन्दा जिले के अन्तर्गत पटना से १०० किलोमीटर दक्षिण-पूर्व में अव-स्थित है। मगध की राजधानी होने के कारण राजगृह समय-समय पर अलग-अलग नामों से विख्यात रहा है, जिनमें वसुमतिपुर, वृहद्रथपुर, कुशाग्रपुर, राजगृह और गिरिव्रज विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

बाल्मीकि रामायण के ३१वें अध्याय में वर्णित अंश के अनुसार ब्रह्मापुत्र कुश के चतुर्थ पुत्र राजा वसु के द्वारा बसाये जाने के कारण यह नगर वसुमति और वसुमतिपुर के नाम से जाना गया। महाभारत के अनुसार यह नगर जरासंध के पिता वृहद्रथ के नाम पर वृहद्रथपुर कहलाता था।

ह्वेनसांग के यात्रा-वर्णन के अनुसार और बौद्ध तथा जैनग्रन्थों में इस स्थान को कुशाग्रपुर की संज्ञा दी गई है। संभवतः इस स्थान पर कुश घास की अधिकता रही हो। कुश अभी भी राजगीर में बहुतायत से पाये जाते हैं।

राजगृह के लिए पाली शब्द राजगृह आया है। राजाओं द्वारा बसाये जाने के कारण यह स्थान राजगृह कहा गया। राजगृह का अपभ्रंश ही राजगीर हुआ। पाँच पहाड़ियों से घिरा होनेके कारण यह स्थान गिरिव्रज कहलाया। रामायण और महाभारतमें इसे यही संज्ञा कई बार मिली है।

ऐसा जान पड़ता है कि वैदिककालमें मगध पर आर्यका प्रभुत्व स्थापित नहीं हुआ। इस कारण उस कालमें लोग घृणासे उसका नाम लिया करते थे। इसकी वंशावलीका ज्ञान हमें पुराणकालसे मिलता है। जरासंध यहाँके अत्यन्त प्राचीन प्रतापी राजाओंमें एक था जो ब्रह्मापुत्र वसुका वंशज था।

उसके बाद हर्यक वंशका शासन प्रारम्भ हुआ। बिम्बसार तथा अजातशत्रु इस वंशके उल्लेखनीय सम्राट हुए। अजातशत्रुने प्राचीन नगरसे बाहर एक और नगर बसाया। इसे पुरातत्ववेत्ताओंने भी स्वीकार किया है।

प्राचीन ग्रन्थों एवं इतिहासों में वर्णित कोई भी स्थल ऐसा नहीं है जिसे हम आधुनिक राजगृहमें नहीं पाते। हमें जरासंध का अखाड़ा मिलता है, देखने को भलेही वहाँ कोई साक्ष्य न हो, लेकिन स्थान घेरकर रखा तो है। जरासन्ध का किला और किलेकी मजबूत दीवारका अवशेष तो मिलता ही है। जरासन्धके अखाड़ेके पास ही स्थानीय लोग कृष्णके रथ

का पहिया दिखाते हैं। मनियार मठ, स्वर्ण भण्डार स्थल, रणभूमि जीवकाम्रवन, बाणगंगा, बिम्बिसारका जेल वेणुवक आदि पौराणिक एवं ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें वर्णित स्थल मिल जाते हैं।

राजगृहके गृद्धकूट पर्वत पर सम्बोधि प्राप्तिके पहले तथागत बुद्धने पाँच वर्षों तक कठोर तप किया था। यह स्थान बुद्धको इतना अधिक पसन्द आया था कि सम्बोधि प्राप्तिके बाद भी वे बार-बार यहाँ आते थे। बिम्बसार और अजातशत्रु दोनों उनके अनुगत थे। सम्प्रति वहाँ एक विश्व-शांति स्तूप बना है। वहाँ जानेके लिए आधुनिक उपकरण आकाशीय रज्जूमार्ग बना हुआ है।

सम्बोधि प्राप्तिके पश्चात् गया राजगृह आते समय स्वयं बिम्बसारके नेतृत्वमें राजगृहकी सम्पूर्ण जनता, अंग और मगधके लोगोंने तथागत का भव्य स्वागत ज्येष्ठी वनमें किया। पश्चात् वेणुवनका सुन्दर बाग तथागतको विश्रामके लिए बिम्बसारने अर्पण किया। यही खमा (क्षेमा) नामक स्त्रीके नेतृत्वमें महिलाएँ भिक्षुणी संघमें आईं।

राजगृहका जलवायु अत्यन्त स्वास्थ्यवर्द्धक है। यहाँके प्रपातों और कुण्डोंका उष्ण जल सुखद तथा गुणकारी है। इसी कारण शरद, हेमन्त और शिशिरमें यह स्थान देशी-विदेशी पर्यटकोंसे भरा रहता है।

कालक्रमेण मुसलमान सन्त श्री मखदूमशाह शर्फुद्दीनने १२३८ ई० में यहाँके विपुलगिरिकी तराईमें ऋष्यश्रृंग कुण्ड

जो अब मखदूम कुण्ड कहलाता है, पर लगभग १२ वर्षों तक तपस्या की। उसके फलस्वरूप राजगृह मुसलमानोंका भी तीर्थ-स्थल बन गया।

इस प्रकार राजगीर बिहार का गौरव है, जो सभी प्रमुख धर्मों का महत्वपूर्ण स्थल है।



ज्ञान-गरिमा का केन्द्र--विक्रमशिला

यह तो जग-जाहिर है कि प्राचीनकालमें विश्वके प्रमुख ज्ञान केन्द्रमें बिहारका स्थान प्रमुख था। नालन्दा और विक्रमशिला विश्वविख्यात ज्ञान साधनके केन्द्र रहे हैं। दोनों विश्वविद्यालय खण्डहरोंके अवशेष और इतिहासके पन्नोंमें ही अब जीवित हैं। परन्तु इन विश्वविद्यालयोंके गौरवमय अतीतसे अब भी हमारा माथा ऊँचा उठ जाता है। प्राप्त इतिहास और अवशेष अब भी बता रहे हैं कि हमारे शिक्षा-संस्थान कितने व्यवस्थित और गौरवपूर्ण रहे हैं।

विक्रमशिलाके अवशेष भागलपुर जिलेके कहलगाँव रेलवे स्टेशनसे १३ किलोमीटर पूरब अतिचक नामक गाँवमें प्राप्त हुए हैं। प्राप्त इतिहासके अनुसार पालवंशके द्वितीय राजा धर्मपाल (७७०–८१५ ई०) ने इसकी स्थापना की। उस कालमें बड़े-बड़े धार्मिक और शैक्षणिक संस्थान राजवंशों द्वारा ही संचालित और पोषित होते थे। नालन्दाकी तरह विक्रमशिला विश्वविद्यालयभी राजवंश द्वारा ही पोषित था। विश्वविद्यालयमें जो पद सबसे सर्वोच्च था, वह था अध्यक्ष का पद। इस पदपर नियुक्ति योग्यताके आधार पर राजा द्वारा की जाती थी। प्राप्त इतिहासके आधारपर यह ज्ञात होता है कि विक्रमशिला विश्वविद्यालयके प्रथम अध्यक्ष बुद्ध-ज्ञानपद थे। इनके अतिरिक्त बैरोयन रक्षित श्री तेजारी, श्री प्रज्ञाकर मति, श्री रत्नाकर शान्ती, श्री मित्र, श्री दीपं-

कर, श्रीज्ञान आदि महान विद्वानोंने समय-समय पर अध्यक्ष का पद सँभाला है।

इस विद्यालयके छः मुख्य द्वार थे। इन द्वारोंके लिए एक-एक अधिकारी रहते थे। उनकी नियुक्ति राजा द्वारा योग्यताके आधारपर की जाती थी। ऐसा लगता है कि इस विद्यालयके छः प्रमुख विभाग रहे होंगे या विद्यालयके अधीन छः महाविद्यालय रहे होंगे। इसी विभाग या महाविद्यालयके सर्वोच्च अधिकारीको द्वारपाल या द्वारपंडित कहा जाता रहा होगा। यहाँ १०८ आचार्यो द्वारा अध्यापन कार्य होता था। लगभग दस हजार छात्र यहाँ शिक्षा ग्रहण करते थे। ये अध्यापक और छात्र भारतके ही सभी क्षेत्रोंके नहीं बल्कि विश्वके प्रमुख स्थानोंसे यहाँ आते थे। जो भी इस संस्थानमें अध्ययनके लिए प्रवेश चाहते थे, उनकी कठिन परीक्षा द्वारपंडित द्वारा ली जाती थी। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ही इस विश्वविद्यालयमें अध्ययनके लिए प्रवेश पाया जा सकता था। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय विश्वविद्यालयकी शिक्षा काफी उच्चस्तरीय रही होगी।

एक शैक्षणिक परिषदकी व्यवस्था थी। यह परिषद विश्वविद्यालयकी व्यवस्थापर नियंत्रण रखती थी। चूंकि पालवंशका प्रभुत्व था, अतः नालन्दा विश्वविद्यालय भी इसी शैक्षणिक परिषदके द्वारा व्यवस्थित होता था दोनों संस्थानों के अध्यापकोंका स्थानान्तरण किया जाता था। विद्वानों का सम्मान भी राजा इसी परिषद के अनुमोदन पर किया करते थे। आज की तरह उपाधि-वितरण समारोह भी होते थे,

उसमें राजा स्वयं उपस्थित रहते थे। मंत्रालय के लिए यह विश्वविद्यालय काफी प्रसिद्ध था। यहाँ के विद्वान बाहर जाकर भी शिक्षण का कार्य किया करते थे।

इस विश्वविद्यालय के अधीन लगभग एक सौ साधना गृह थे। उनमें पचास तो विशेष साधकों के लिए थे और शेष सामूहिक। यह विश्वविद्यालय विशालकाय चहारदीवारी से घिरा हुआ था। इन दीवारों पर जगह-जगह फूल, पत्तियां और चित्र आँके गये थे। मध्य में एक विशाल चैत्य का वर्णन है।

सत्तर फीट ऊँचे और पचहत्तर फीट चौड़े एक स्वास्तिकार चैत्य का अवशेष प्राप्त है जो दो प्रदक्षिणाओं से घिरा है। यह घिराव लगभग २० फीट ऊँचा है। इसके चारों ओर जो गर्भगृह हैं उनमें भगवान बुद्धकी विशाल प्रतिमाएँ विभिन्न मुद्राओं में हैं। दीवारों पर बौद्ध देवी-देवताओं के चित्रों के अलावे पशु-पक्षी आदि के खूबसूरत चित्र बने हैं, जो पक्की ईंटों को उभार कर बनायी गयी है। भवान बुद्ध की एक विशाल प्रतिमा भी मिली है। पूरब की ओर पद्मासन लगाये भगवान तथागत। इस प्रतिमा के दक्षिण जो गर्भगृह है उसमें काफी सुन्दर चित्रकारी है। उत्तरी गर्भगृह में लगभग दो क्विटल वजन का उष्णीश लगा सिर मिला है। एक चौकोर शिलालेखपर ३० पंक्तियों की लिखावट है। यह लिखावट संभवतः १०वीं सदी का है। लिखावट प्रकृतिकोप के कारण अस्पष्ट हो गयी है।

चैत्य के उत्तरी गर्भगृह के सामने कुछ दरीपर शिला-

स्तम्भ के काफी टुकड़े प्राप्त हुए हैं। भवनों का एक मंजिल

से अधिक के होने का अनुमान किया जाता है, क्योंकि सीढ़ियों के भी अवशेष प्राप्त किये गये हैं। इनमें लोहे की कीलें लगी हैं। सुन्दर नक्काशीदार हाथी के सूँड़नुमा डंठल लगे हुए हैं। सीढ़ी के नीचे नक्काशीदार फर्श है फर्श और सर जमीनपर राख और जली लकड़ी के टुकड़े पाये गये हैं। दीवालों पर काले जले का दाग मौजूद है।

बौद्ध प्रतिमाओं के अतिरिक्त गणेश, सूर्य, अवलोकितेश्वर आदि की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। जानवरों की मूर्तियों में हाथी, घोड़ा, कुत्ता, घड़ियाल आदि प्रमुख हैं। पत्थर की कटोरी और खाने के अन्य बर्तन भी प्राप्त हुए हैं। पत्थरों पर सम्पूर्ण बुद्ध-जीवन-चरित्र को खूबसूरत ढंग से दिखाया गया है।

पत्थर के अतिरिक्त चाँदी, काँसे और हाथी के दाँत तथा सीप से बनी वस्तुएँ भी प्राप्त हुई हैं। चाँदी की नक्काशीदार चूड़ियाँ और कुछ सिक्के मिले हैं। काँसे की बुद्ध-प्रतिमा अपनी सुन्दरता से लोगों को मोह लेती हैं। काँसे की चूड़ी और मछलीनुमा हैंडिल कलात्मक नक्काशी के नमूने हैं। कला का विकास तथा जनजीवन की सुरुचि का पता हमें उनसे चलता है। हाथी दाँत के पासे भी प्राप्त हुए हैं। ऐसा अनुमान है कि ये पासे योग अथवा मंत्र सिद्ध के लिए रहे होंगे क्योंकि वह संस्था मंत्रायन के लिए प्रसिद्ध था। कौड़ियाँ ढेर मात्रा में मिली हैं। कौड़ी का भी प्रयोग मंत्र-तंत्र में अब भी होता है अथवा विनिमय का माध्यम रहा होगा। हाथी दाँत के छोटे-छोटे स्तूप तथा अन्य सुन्दर वस्तुएँ भी मिली हैं।

इस संस्था की प्रसिद्धि दिनों दिन बढ़ती रही। लेकिन देश का भीतरी शासनतन्त्र कमजोर पड़ता गया। देश पर विदेशी आक्रमणों का एक सिलसिला शुरू हो गया। भारतीय मन्दिर, मठ, धार्मिक स्थान, शिक्षण संस्थान आदि आक्रमण-कारियों को विशेषरूप से आकर्षित करते रहे। १२वीं सदी के अन्त से १३वीं सदी के शुरू तक विभिन्न आक्रमणकारियों ने विक्रमशिला को लूटा और ध्वस्त किया। अन्त में तुर्कों और बख्तियार खिलजी ने इसे आग लगाकर मटियामेट ही ही कर डाला। देश के हिन्दू धर्मावलम्बी अथवा बौद्ध धर्मा-वलम्बी राजा इस महान शिक्षण-संस्थान को बचा न पाये। विक्रमशिला को इतिहास में भी ठीक ढंग से अभी तक हम स्थान नहीं दिला सके हैं। सम्भवतः अगले कुछ वर्षों में इस प्राचीन गौरवमय संस्थान के सम्बन्ध में काफी प्रामाणिक जानकारी हमें पुरातत्व के आचार्यगण दे पायेंगे।

कुछ दिन पहले यहाँ से एक बुद्ध प्रतिमा प्राप्त हुई है। यह प्रतिमा अभय मुद्रा ११वीं सदी की मानी जा रही है। अब यह रह गया है कि इस पर अधिक रोशनी डाली जाये।



नालन्दा का गौरवशाली ज्ञानपीठ

नव निर्मित नालन्दा जिलेका चप्पा-चप्पा प्राचीन गौरव-गाथा का केन्द्र है। प्राचीन मगध साम्राज्य की राजधानी राजगृह इसी के अन्तर्गत है। ऐश्वर्य मंडित मगध साम्राज्य ने समय-समय पर सभी धर्मों को राजधर्म के रूप में संरक्षण दिया था। इसलिए पावापुरी, नालन्दा और स्वयं राजगृह संस्कृतियों के खण्डहरों के रूप में आज भी विद्यमान हैं।

आज मैं आपको शिक्षा और ज्ञान के लिए प्रसिद्ध नालन्दा दिग्दर्शन के लिए ले चलूंगी। मनुष्य की ऐश्वर्य-लिप्सा, सुख-सौन्दर्य प्राप्ति की वासना, विभूति रूप में अभिव्यक्त होकर जगह को अपने रंग में रंगकर मनुष्यी सजीवता प्रदान करती है। इसका रंग भले ही धूमिल पड़ जाय, गौरव भिशुण्ण है।

ऐतिहासिक दृष्टि से नालन्दा भारत का एक प्राचीन स्थल है। यह स्थल मगध की प्राचीन राजधानी राजगृह के निकट उत्तर की ओर है तथा पटने से तीस कोस दक्षिण एवं बड़गांव से ग्यारह कोस पश्चिम में स्थित है।

बड़गांव नामक स्थान पर खुदाई का कार्य १९वीं शताब्दी के अन्त में आरंभ हुआ था। सर्वप्रथम जनरल कर्निंघम तथा डॉ० स्पूनरने खुदाईका कार्य आरम्भ किया था। तत्पश्चात भारत सरकार के पुरातत्व-विभागने सन् १९१५ में खुदाई का काम प्रारम्भ किया। अबतक जो

खुदाई का काम हुआ है उससे इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि नालन्दा सिर्फ बिहार राज्य के ही नहीं वरन् प्राचीन भारत के गौरव का प्रतीक था। बौद्धयात्रियों के विव-रण से ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम सम्राट अशोक ने नालन्दा में एक मठ स्थापित किया था। चीनी यात्री ह्वेनसांगने लिखा है कि बाद में शंकर तथा मुद्गलगोली नामक दो ब्राह्मणों ने इस मठ को विशाल आकार में बनवाया। आज भी इसकी मिली दीवार ३०-३२ हाथ ऊँची हैं। कहते हैं कि इस विद्यापीठ में रहकर नागार्जुन ने कुछ समय तक उक्त शंकर नामक ब्रह्मस्त से शास्त्र पढ़ा था।

सन् ६३७ ई० में ह्वेनसांगने इस विद्यापीठ में जाकर प्रज्ञाभद्र नामक एक आचार्य से विद्याध्ययन किया था। सातवीं शताब्दी तक सैकड़ों बौद्धयाचक यहाँ एकत्रित होकर शास्त्र ज्ञान की चर्चा करते रहे। ज्ञान तथा धर्मोपदेश देने के लिए यहाँ १०० कृतविद्या बौद्ध पंडित नियुक्त रहते थे। प्रायः दस हजार से अधिक याचक और शिष्य यहाँ रहते थे। उनसे शुल्क नहीं लिया जाता था। इसके अतिरिक्त भोजन, वस्त्र और दैनन्दिन आवश्यकता की वस्तुएँ उन्हें मुफ्त दी जाती थी। आधुनिक खुदाई से पता चलता है कि एक कोठरी में एक ही छात्र रहता था। क्योंकि बड़ी से बड़ी कोठरी की लम्बाई १२ फुट और चौड़ाई ८ फुट पायी गई है।

सर्वथा सार्थक

नालन्दा विश्वविद्यालय अपने सम्पूर्ण रूप और अर्थ में था। यहाँ हर सम्प्रदाय की शिक्षा का प्रबन्ध था। हर

प्रकार के विषय पढ़ाये जाते थे। आयुर्वेद, ज्योतिष, शिल्प-कला, चित्रकारी, संगीत आदि की शिक्षा का सुन्दर प्रबन्ध था। नालन्दा की जलघड़ी सारे मगधवासियों को ठीक समय का ज्ञान कराती थी। यहाँ का पुस्तकालय भवन नौ मंजिल का था, जिसकी ऊँचाई ३०० फीट के लगभग थी। भारत के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के ज्ञानपिपासु यहाँ रहते थे। इन अर्थों में अपने ढंग का नालन्दा सच्चा विश्व-भारती विश्वविद्यालय था।

खंडहरों में एक नहीं, अनेक भंडार मिले हैं जिनमें पुराने बर्तन तथा अनाज मिले हैं। संग्रहाल पुराने हथियार, बरतन, बुद्ध की मूर्तियाँ, शिलालेख तथा मोहरें आदि रखी हैं। नालन्दा में प्राप्त कुओं की रूपरेखा विभिन्न प्रकार की है। वे गोल नहीं हैं वरन् छोटी-छोटी ईटों से बँधे हैं और आठ पहल हैं।

पटना-राँची रोड पर सड़क से ही पावापुरी के विख्यात सरोवर मन्दिर की रमणीक झांकी दिखाई देने लगती है। सड़क से लगभग एक किलोमीटर दूर यह पवित्र स्थान है। भगवान महाबीर ने इसी स्थान पर मुक्ति का परमपद प्राप्त किया। कार्तिक कृष्ण अमावस्या को प्रातःकाल का वह पुनीत दिवस और समय बड़ा ही भावविभोर करने वाला और बन्दनीय था। देवों ने उस स्थान की धूलि मस्तक पर लगायी और जब वहाँ एकत्रित मनुष्यों ने भी वैसा ही करना शुरू किया तो वहाँ सरोवर ही बन गया। बाद में वहाँ एक भव्य मन्दिर का निर्माण हुआ जिसे जल-मन्दिर कहते हैं।

इस मन्दिर में भगवान महावीर के चरणचिह्न बने हैं। मन्दिर तक जाने के लिए लाल पत्थर से बना सुन्दर पुल है। मन्दिर की ओर से तालाब तक जाने के लिए सीढ़ियाँ हैं। जल में तरह-तरह की मछलियाँ कल्लोल करती रहती हैं तो दूसरी ओर भाँति-भाँति के पक्षी क्रीड़ा में मग्न दीख पड़ते हैं। पूरे भारत की तरह कार्तिक कृष्ण अमावस्या को इस स्थान पर भी भगवान महावीर का निर्वाणोत्सव धूम-धाम के साथ मनाया जाता है। निर्वाण पर लड्डू चढ़ता है और रात्रि में दीपावली सजायी जाती है। पावापुरी में यह दिन मेला का हो जाता है। पूरे भारत के कोने-कोने से यात्री आते हैं।

जल मन्दिर के सामने दिगम्बर जैन धर्मशाला है जिसमें मन्दिरों की शृंखला है। यात्री यहाँ भी सब सुविधाएँ पाता है। दिगम्बर जैन धर्मशाला से कुछ दूरी पर श्वेताम्बर जैन मन्दिर है जिसमें जिनेन्द्र की प्रतिमाएँ हैं। थोड़ी ही दूर पर श्वेताम्बर जैन समवशरण मन्दिर और जिनालय है जिसमें महावीर, गौतम स्वामी और पार्श्व में प्रभु की प्रतिमाएँ हैं। यहाँ का समवशरण मन्दिर भी स्थापत्य कला का मनमोहक उदाहरण है। यह संगमरमर का बना हुआ है।



दर्शनीय और ऐतिहासिक—मन्दार गिरि

मन्दार गिरि भागलपुर से ३० मील दक्षिण है। इसकी ऊँचाई ७०० फीट और घेरा तीन-चार मील के लगभग है। पर्वत हरे-भरे झाड़ झंखाड़ों से भरा है। इस पर्वत के उल्लेख अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थों में हैं। स्कन्धपुराण, गणेशपुराण, वाराह-पुराण, मारकण्डेय-पुराण तथा ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में इसका माहात्म्य वर्णित है। पहाड़ी की चोटी पर दो सबसे पुराने मन्दिर और कई गुफाएँ हैं। वहाँ तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ बनी हैं। सीढ़ी पर केवल एक लेख से जान पड़ता है। कि सीढ़ी को उग्रभैरव नामक एक बौद्ध राजा ने बनवाया था। ये मन्दिर मुसलिम काल के पहले के बताये जाते हैं। चोल राजा छत्रसेन इसके निर्माता थे, ऐसा अनुमान है। चट्टान पर कुछ मूर्तियाँ अनगढ़ रूप से निर्मित हैं, साथ ही दो शिलालेख भी हैं। पहाड़ी के ऊपर और नीचे बहुत से तालाब हैं सबसे बड़े तालाब को सीताकुण्ड कहते हैं। यह कुण्ड ५०० फीट उँचे टीले पर बने सबसे पुराने मन्दिर के खंडहर के सामने है। पहाड़ों पर शिव-कुण्ड और आकाशकुण्ड भी हैं जहाँ-तहाँ बहुत-सी टूटी-फूटी मूर्तियाँ पायी जाती हैं।

पुराणों में लिखा है कि एक बार भगवान विष्णु क्षीर-सागर में सोये हुए थे कि उनके कान के मैल से मधु-कैटभ नामक राक्षस उत्पन्न हुआ। जब वह देवताओं को बहुत सताने लगा तो भगवान विष्णु को उससे युद्ध करना पड़ा।

दस हजार वर्ष तक कहीं युद्ध करने के बाद विष्णु उसका सिर धड़ से अलग कर सके। किन्तु उस पर भी चैन नहीं, उसका धड़ बिना सिर के भी उत्पात करता रहा। इस पर विष्णु ने उसके धड़ पर मन्दार गिरि को रख दिया और उस अपने पांव से दबाये रहे। इस प्रकार विष्णु मधुसूदन के रूप में इस गिरि पर विराजमान समझे जाते हैं। यह भी कहा जाता है कि मन्दार गिरि वही पर्वत है जिसको लेकर लक्ष्मी और अमृत निकालने के लिए दैत्यों और देवताओं ने सागर-मंथन किया था। इस मन्थन में शेषनाग ने रस्सी का काम किया था। स्मरण रखने के लिए पर्वत के घेरे में पत्थर खोदकर शेषनाग का चिह्न बना दिया गया है। कहते हैं कि चोलराज छत्रसेनने ही यह चिह्न उत्कीर्णित कराया है।

इस पर्वत के आस-पास का क्षेत्र भी देखने योग्य है। यहाँ हिन्दू तथा बौद्ध देवी-देवताओं की मूर्तियों के भग्नावशेष बहुतायत से पाये जाते हैं। मन्दार पहाड़ी के चारों ओर एक-दो मील तक पुराने मकानों के खंडहर, प्रस्तर-प्रतिमाएँ तालाब और बड़े-बड़े कुएं फैले हैं। इससे ज्ञात होता है कि यहाँ पहले एक बहुत बड़ा नगर होगा।

आप-पास के लोग कहते हैं कि इस नगर में ५२ बाजार, ५३ सड़कें और ८८ तालाब थे। कहा जाता है कि इस नगर के एक विशाल मन्दिर में दीपावली के दिन एक लाख दीपक जलते थे और हर घर से केवल एक दीपक आता था। दीपक रखने के लिए दीवार में छोटे-छोटे छेद थे। उस

मन्दिर की टूटी-फूटी दीवारों में अब भी छोटे-छोटे छेद नजर आते हैं। इस मन्दिर से सौ गज की दूरी पर एक पुराना टूटा-फूटा बड़ा महल है जो काँचपुरी के राजा चोलका बनवाया बताया जाता है। २२०० वर्षों का यह महल की दीवार पत्थर की है। महल के बीच एक हाल, सामने बरामदा और बगल में ६ कमरे हैं। कहते हैं कि राजा चोल यहां एक कुन्ड में स्नान कर कुष्ट रोग से मुक्त हुआ था। इसलिए यहां उसने एक महल बनवाया, नगर बसाया, उसे रुचिपूर्वक सजाया। एक विजयसूचक पत्थर के मेहराब पर खुदे संस्कृत के एक लेख से पता चलता है कि १५९७ ई० के लगभग यह नगर वंतमान था।

कुछ लोग कहते हैं कि किक्लापहाड़ नामक मुस्लिम आक्रमणकारी ने इस अपूर्व नगर को ध्वस्त किया। मन्दार पहाड़ पर मधुसूदन मन्दिर के ध्वस्त होने पर वहाँ की मूर्ति बौंसी लाई गई थी जो अब भी वहीं विद्यमान है। पौष संक्रान्ति के दिन मूर्ति पहाड़ के पास उक्त मेहराब पर लट-कायी जाती है। उस समय यहाँ एक वृहत मेले का आयो-जन होता है जो १५ दिनों तक रहता है।

इस प्रकार के पौराणिक पुरातात्विक महत्व के दर्श-नीय स्थल बिहार में बिखरे पड़े हैं।



आरा तथा भोजपुर इतिहास के सन्दर्भ में

आरा शहर का नाम यह क्यों पड़ा, इसके सम्बन्ध में कई मत हैं। कुछ लोग अरण्य से आरा शब्द की उत्पत्ति बताते हैं। कहते हैं कि यहाँ जंगल थे। अब भी शहर के पास अरण्य देवी का मन्दिर है। कुछ लोग बताते हैं कि आराम-नगर से आरा नाम पड़ा। आराम बौद्ध मठको कहते हैं। यहाँ बहुत से बौद्ध मठ थे, इसलिए इस स्थान का नाम आरामनगर पड़ गया।

लोगों का यह भी कहना है कि आरा का पुराना नाम एकचक्रा था। महाभारत में लिखा है कि इसके आस-पास में बकासुर नामक एक राक्षस रहता था। वह प्रतिदिन इस गाँव से एक आदमी को पकड़कर खाया करता था। लोग बारी-बारी से प्रतिदिन उसके पास एक आदमी को भेजा करते थे। वनवास के समय एक बार पाण्डव एकचक्रा पहुँचे और एक ब्राह्मण के अतिथि हुए। संयोग से उस दिन उसी ब्राह्मण के घर से एक आदमी को उस राक्षस के घर जाना था। उस ब्राह्मण के उपकार का बदला चुकाने के लिए भीम स्वयं उस राक्षस के पास जाने को तैयार हुए। वह राक्षस भीम को नहीं खा सका। पास के बर्का गाँव में उसे मार डाला और लाश एकचक्रा ले आये। आरा के पास अब भी बर्का गाँव है।

बौद्धग्रंथों में लिखा है कि भगवान बुद्धने एक मनुष्य भक्षक राक्षस को अपना अनुयायी बना लिया था। इसीकी

स्मृति में सम्राट अशोक ने यहाँ एक स्तूप और स्तम्भ खड़ा कर दिया था जिसपर सिंह की एक मूर्ति थी। चीनी यात्री ह्वेनसांग यहाँ आया था।

मुगल साम्राज्य का संस्थापक बाबर मुहम्मद लोदी को हराकर इसी स्थान पर आया था। पश्चिम बिहार जीतने का उत्सव यहीं मनाया गया था। इसलिए इस स्थान को शाहाबाद भी कहा जाता था।

इस शहर के इतिहास में सन् १८५७ का विद्रोह एक मुख्य घटना है। १८५७ की २५ जुलाई के दानापुर के देश-भक्त सैनिक अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर शाहाबाद आये। बाद में बहुत से इसी जिले के रहनेवाले राजपूत थे। जगदीशपुर के प्रभावशाली और उत्साही जमींदार इनके सरदार बने। इनके गिरोहने जेल तोड़कर कैदियों को निकाल लिया और सरकारी खजाना लूट लिया। यहाँ बहुत थोड़े से अंग्रेज थे इससे ये लोग आन्दोलनकारियों का मुकाबला नहीं कर सके। इन लोगों ने अपने स्त्री-बच्चों को बाहर भेज दिया और खुद किले में बने अंटाघर में छिपे रहे। ८ दिनों तक ये उसी किलेनुमा अंटाघर में छुपे रहे। बलवहियों ने उसे तोड़ने की बहुत कोशिश की पर सफल न हो सके। इसके बाद दूसरी जगहों से अंग्रेज सैनिकों के कई दल पहुँचे अन्त में उनकी विजय हुई। आन्दोलनकारी पकड़े गये। कितनों को जघन्य फाँसी की सजा हुई। वह स्थान जहाँ अंग्रेज छपे थे आरा-हाउस के नाम से प्रसिद्ध है।

आरा शहर में देखने लायक पुरानी चीजें कुछ विशेष नहीं हैं। यहाँ एक जुम्मा मस्जिद है जो औरंगजेब के वक्त की बनायी हुई बतायी जाती है। अठारहवीं सदी के अन्त में जॉन डीन यहाँ का कलक्टर था। उसने एक मुसलमान महिला से शादी की थी। उसकी बनवायी एक मौला बाग है। उसी अहाते में जॉन डीन की कब्र भी है। शहर में जैनियों के कुछ मन्दिर हैं।

देववरुणार्क

यह स्थान आरा से २७ मील दक्षिण-पश्चिम है। यहाँ दो बहुत पुराने मन्दिर हैं। बड़े मन्दिर के सामने गुप्त साम्राज्य के चार स्तम्भ हैं जिनमें एक पर जीवित गुप्त (७४० ई०) की शिला लिपि है। मन्दिर के पास ही गुप्तकाल की एक स्तम्भ है जिसके ऊपर उत्तर, पूरब, दक्षिण और पश्चिम चारों दिशाओं के स्वामी कुबेर, इन्द्र, वरुण और यम की मूर्तियाँ हैं। नीचे आठों ग्रहों की टूटी-फूटी मूर्तियाँ हैं।

मसाढ़

आरा से छः मील पश्चिम यह एक गाँव है। इसका पुराना नाम महासार था। चीनी यात्री ह्वेनसांग यहाँ आया था। उसने अपने उच्चारण के अनुसार इसे मो-हो-सो-लो लिखा है। यहाँ जैनियों का एक मन्दिर है जो १८१९ ई० का बना हुआ लगता है। इस मन्दिर में आठ जैन मूर्तियाँ हैं जिनमें ७ पर सन् १३८६ के शिलालेख हैं। इन लेखों से ज्ञात होता है कि मारवाड़ से कुछ जैनियों का यहाँ आगमन हुआ था। उन्होंने इन मूर्तियों का निर्माण कराया था।

इन लेखों से इस गाँव का पुराना नाम महासार भी सिद्ध होता है। यहाँ की बाकी मूर्ति पर, जो १८१९ ई० की है, लिखा है कि जब करुण देश में अंग्रेजों का राज्य था, उस समय आरामनगर के बाबू शंकरलाल ने यह मूर्ति प्रदान की थी। इस लेख से आरा शहर का पुराना नाम आरामनगर और शाहाबाद जिले का पुराना नाम करुण देश साबित होता है। बाल्मीकि रामायण में करुण देश और मलद प्रान्त बहुत पवित्र स्थान माना गया है। कुछ लोग अनुमान करते हैं कि ये ही दोनों अबकारी साथ और मसाढ़ गाँव के रूप में हैं और पास ही पास मौजूद हैं। यहाँ शिवलिंग बहुत पाये जाते हैं। कारी साथ के पास एक पुराना जलाशय है जिसे लोग शिवभक्त वाणासुर की कन्या को क्रीड़ावापी कहते हैं। यहाँ से कुछ दूर बाल नामक गाँव वाणासुर के पूर्वज बलि की राजधानी समझा जाता है।

महादेवपुर

यहाँ एक ४६ फीट ऊँची दो मंजिले मन्दिर का भग्नावशेष है।

बक्सर

कहते हैं कि वेद मन्त्र की रचना करने वाले बहुत से ऋषि यहाँ हुए। इस स्थान को वेद गर्भ कहते हैं। यहाँ गौरीशंकर के मन्दिर के पास एक तालाब है जिसका पहला नाम अघसर था अर्थात् पाप को दूर करने वाला। कहते हैं कि बेदशिरा नामक एक ऋषि ने दुर्बासा ऋषि को डराने के लिए व्याघ्र का रूप बनाया। इसपर क्रुद्ध होकर दुर्बासा

ने उन्हें शाप दिया—तू व्याघ्र ही बना रह। अन्त में इसी तालाब में नहाने से वे अपना असली रूप पा सके। तब से इस तालाब का नाम व्याघ्रसर पड़ गया। उसी नाम पर इस शहर का नाम व्याघ्रसर, बघसर और अन्त में बक्सर पड़ गया। बक्सर में रामेश्वरनाथ का मन्दिर प्रसिद्ध है। मान्यता है कि बक्सर के पास ही विश्वामित्र का सिद्धाश्रम था। लेकिन बाल्मीकि रामायण से पता चलता है कि सिद्धाश्रम देवकुण्ड के पास सिधरामपुर नामक स्थान में रहा होगा जो पटना से करीब ५० मील दक्षिण है। ताड़का-वन जहाँ राम-लक्ष्मण ने ताड़का को मारा, बिहिया के पास जाना पड़ता है। सन् १७६४ में मीरकासिम और अवध के नवाब शुजाउद्दौला की सेना को अंग्रेजों ने बक्सर के पास ही हराया था। यहीं अंग्रेजों की निर्णायक विजय थी जिसे प्राप्त कर वे बिहार, बंगाल के शासक बन बैठे। कुछ दिनों के बाद उन्होंने यहाँ एक विजय स्तम्भ बनवाया। युद्ध की दृष्टि से महत्वपूर्ण बक्सर का किला भी अंग्रेजों के हाथ लग गया था।

चौसा

१५३९ में बंगाल से लौटते हुए हुमायूँ को शेरशाह ने चौसा में हराया था। शेरशाह कर्मनाशा नदी के किनारे पहले से अफगान सैनिकों को लेकर हुमायूँ की राह रोकने को खड़ा हो गया। हुमायूँ शेरशाह का मुकाबला न कर सकने के कारण तीन महीने तक रुका रहा।

अन्त में शेरशाह को बंगाल, बिहार का शासक कबूल कर सन्धि कर ली। लेकिन शेरशाह ने धोखा देकर अचानक

चढ़ाई कर दी। हुमायूँ एक भिश्ती के सहारे किसी तरह गंगा पारकर दिल्ली पहुँचा पर उसके आठ हजार सैनिक मारे गये। हुमायूँ ने उस भिश्ती को एक दिन के लिए अपनी गद्दी पर बैठाया। कहते हैं कि एक दिन गद्दी पर बैठकर भी उस भिश्ती को चमड़े का मोह नहीं गया। उसने चमड़े का सिक्का चला दिया।

भोजपुर

इसका नाम उज्जैन के राजा भोज के नाम पर पड़ा जिसने कुछ राजपूत सरदारों को लेकर यहाँ के आदिनिवासी चेरो जाति के लोगों को मार भगाया था। भोज राजाओं के पुराने महलों के चिह्न अब भी देखने में आते हैं। इस गाँव के नाम पर ही अब जिले का नाम है। राजा भोज के वंशजों का ही डुमराँव और जगदीशपुर पर भी अधिकार था। अब तो सम्पूर्ण भोजपुर एक ही जिला है जिसका मुख्यालय आरा है।



छपरा और निकटवर्ती दर्शनीय स्थल

गङ्गा और सरयूका पहले जहाँ संगम था, वहाँ बाढ़ बराबर आती रहती थी। उस कारण लोग पक्की ईंटों का मकान नहीं बना पाते थे। सारे घर फूस के होते जिनके ऊपर छप्पर हुआ करता था। उन्हीं छप्परों से छपरा नाम प्रसिद्ध हुआ। अब भी छपरा गंडक के किनारे बसा हुआ है। छपरा में रतनपुरा नाम का एक मुहल्ला है। कहते हैं कि हिंदूकाल के राजा रतनसेन की राजधानी यहाँ थी। उनका बनाया रत्नेश्वरनाथ का मन्दिर था जहाँ अब धर्म-नाथजी का मन्दिर है।

अम्बिका स्थान (आमी)—इस स्थानपर भवानी का मन्दिर है। पुराण प्रसिद्धकथा है कि जब दक्षकन्या सती ने अपने पति शिव के अपमान से मर्माहत हो अपने पिता के यज्ञ में प्राण त्याग किया था तो शिव क्रोध में उनके शव को लेकर इधर-उधर घूमने लगे। जगत के नष्ट हो जाने के भय से विष्णु ने अपने चक्र से शव को खण्ड-खण्ड कर दिया जो भिन्न-भिन्न स्थानों पर गिरे थे। कहते हैं कि यहाँ भी एक खण्ड गिरा था जिसके कारण इस स्थान की प्रसिद्धि हुई। पास ही यज्ञकुण्ड का स्थान भी बताया जाता है। चैत में यहाँ मेला लगता है। स्थानीय लोग बताते हैं कि यहाँ राजा सुरथ की राजधानी थी।

चिराँद

छपरा से पूरब सरयू के किनारे पर यह एक गाँव है। पहले गंगा इसके पास से ही बहती थीं। प्राचीन काल में यह एक बड़ा शहर था। शहर शहर के चिह्न अब भी विद्यमान हैं। जिस ऊँचे टीले पर चार मन्दिर बने हैं वह एक पुराने किले का भग्नावशेष है। पास में जीवनकुण्ड और ब्रह्मकुण्ड नाम के दो पुराने तालाब हैं। कहते हैं कि वहां च्यवन ऋषि का आश्रम था। आश्रम के स्थानपर आजकल कार्तिक पूर्णिमा में मेला लगता है। महाभारत काल के प्रसिद्ध राजा मयूरध्वज की यहाँ राजधानी बतायी जाती है मयूरध्वज की मृत्यु महाभारत युद्ध में हुई थी। चिराँद के मुख्य टीले पर एक मसजिद है जो प्राचीनकाल के हिन्दू मन्दिरों के सामान से बनी हुई है। फाटक पर तीन पंक्तियों में कुछ लिखा हुआ है। उसमें १४९३ से १५१९ ई० के बीच बङ्गाल पर शासन करने वाले हुसेन शाह का भी नाम है। अनुमान किया जाता है कि उसी ने यहाँ के हिन्दू मन्दिरों को तोड़कर मस्जिद बनवायी थी। कहा जाता है कि चिराँद को आदिम जाति चेरो ने बसाया था—जिसका इस जिले में कभी बोलबाला था। वहाँ बहुत सी बौद्धकालीन मूर्तियों के पाये जाने के कारण इस बात में संदेह नहीं रहता कि यहाँ प्राचीन बौद्ध नगर था।

डूमरसन

छपरा सत्तारघाट सड़क पर यह एक गाँव है। यहाँ रामनवमी पर मेला लगता है। मेला पशु विनिमय के लिए विख्यात है।

महेन्द्रनाथ महादेव का मन्दिर और कमल का विशाल सरोवर एकमा नामक स्थान पर है।

मांझी

सरयू किनारे के इस गाँव में पुराने किले का भग्नावशेष है। कहते हैं कि इसे चेरी वंश के मांझी मकरा ने बनवाया था। लेकिन कुछ लोग यह भी बताते हैं कि यहाँ का राजा चेरो नहीं बल्कि कोई मल्लाह था।

इस गाँव में एक विशाल वट वृक्ष है। कहते कि यहाँ मुसलमान शासक के अनैतिक आचरण के विरोध में गाङ्गी पण्डायन नाम की एक युवती विधवा पृथ्वी में प्रवेश कर गयीं थी। वहीं यह वृक्ष उग आया। स्त्रियाँ यहाँ पूजा करती हैं।

गोदना अथवा रिवीलगंज

कहते हैं कि गोदना नाम गौतम ऋषि के नाम पर रखा गया है। न्याय शास्त्र के रचयिता ऋषि गौतम का आश्रम यहीं था। मिथिला जाते हुए गौतम की पत्नी अहिल्या का उद्धार रामचन्द्रजी के द्वारा हुआ था, ऐसी कथा प्रसिद्ध है। कुछ लोगों का विचार है कि कुशी नगर जाते हुए गौतम बुद्ध इस स्थान पर आये थे। इसीलिए गोदाना नाम है।

अंगरेज चुंगी

कलक्टर रिवील के नाम पर इस स्थान का नाम रिवील-गंज पड़ा। यहाँ रिवील कोठी है तथा उसकी कब्र भी यहीं है। इस स्थान पर भी चैत और कातिक में मेला लगता है।

सारन खास

इस स्थान पर बहुत दूर तक पुराने किले, मकानों, मन्दिरों, मस्जिदों, दरगाहों आदि के भग्नावशेष फैले हैं। मसजिद, दरगाह आदि हिन्दू मन्दिरों के सामान से बने जान पड़ते हैं। यहाँ ४१ फीट लम्बे एक काले पत्थर पर एक नवग्रह की मूर्तियाँ हैं और दूसरी ओर लेख वाला पत्थर मिला है। यहाँ से कुछ मील दूर भीखबन और कापिया नाम के गाँव है जो बौद्ध काल के प्रसिद्ध स्थान मालूम पड़ते हैं।

सिमरिया

इस गाँव के पास भी गंगा और सरयू का संगम था और लोग बहुत बड़ी संख्या में यहाँ स्नान करने आते थे। इस समय कातिक पूर्णिमा में यहाँ मेला लगता है। कहते हैं कि यहाँ ऋषि दत्तात्रेय का आश्रम था।

सोनपुर

गंगा और गंडक के संगम पर सोनपुर एक प्रसिद्ध स्थान है। इसी स्थान पर महीनदी भी गंडक में मिलती है। कातिक पूर्णिमा को यहाँ एक बहुत बड़ा मेला लगता है जो करीब एक महीने तक रहता है। बिहार का यह सबसे पुराना मेला है। संसार के प्रसिद्ध बड़े-बड़े मेलों में से यह एक है। हिन्दू लोग इस स्थान को हरिहर क्षेत्र कहते हैं।

श्री मद्भागवत में लिखा है कि बहुत प्राचीन काल में त्रिकूट पर्वत के चारों ओर एक बहुत बड़ा जलाशय था। उस जलाशय में ग्राह रहता था। एक दिन हाथियों का बहुत बड़ा झुण्ड वहा पानी पीने आया। ग्राह ने गज की टाँग

पकड़ ली। दोनों में बड़ी लड़ाई हुई। गज जब हारने लगा तो हरि की पुकार की। हरि और हर सभी देवों के साथ आये। विष्णु ने सुदर्शन चक्र से ग्राह का सिर काट दिया। गज और ग्राह दोनों का उद्धार हो गया। पुराणों में लिखा है कि ग्राह पूर्व जन्म का 'हू-हू' नाम का गन्धर्व था जिसने अपनी पत्नियों के साथ जलक्रीड़ा करते समय देवल ऋषि का पाँव पकड़ लिया था। ऋषि ने श्राप दे दिया और वह ग्राह हो गया। गज भी पूर्व जन्म में पाण्डय देश का राजा था जो अगस्त्य ऋषि के श्राप से गज हो गया था। इस समय हरिहर क्षेत्रों में जो मन्दिर है वहाँ हरि और हर की सम्मिलित मूर्ति है। किन्तु कुछ लोग इस लड़ाई का स्थान त्रिवेणी घाट भैसालोटन को बताते हैं। जंगल और पहाड़ों को देखते हुए उसी को सही माना जा सकता है।

सोनपुर का प्लेटफार्म दुनिया का सबसे बड़ा प्लेटफार्म समझा जाता है।



पलामू जिले में किले ही किले

पलामू जिला का नाम जिस स्थान को ध्यान में रखकर रखा गया—वह डाल्टेनगंज से १५ मील दक्षिण-पूर्व एक छोटा-सा गाँव है। यह गाँव औरंगा नदी के किनारे पड़ता है। इसी स्थान पर कभी चेरों राजाओं की राजधानी थी। चेरों राजाओं ने यहां दो किले बनाये, जिनके भग्नावशेष अब भी हैं। इन किलों को पहले मुगलों ने, फिर पीछे अंग्रेजों ने जीत कर उनका दमन किया था। इन किलों में से एक को नया किला और दूसरे को पुराना किला कहते हैं। चेरों राजाओं की इसी राजधानी के नाम पर 'पलामू' पर पीछे जिले का नाम पलामू पड़ा। ऐतिहासिकों और पुरातत्व-प्रेमियों के लिए यह स्थान जिले के अन्दर सबसे आकर्षक स्थान है।

पलामू के दोनों किले सरकार के सुरक्षित वन के अन्तर्गत हैं। किले को सुरक्षित रखने के लिए पास के जंगल-झाड़ों को समय-समय पर काटते रहना पड़ता है तब भी बाघ, चीते आदि जंगली जानवर यहाँ, खासकर पुराने किले के पास प्रायः आया ही करते हैं। पुराने किले की दीवारों पर अनेक स्थानों पर तोप के गोले के निशान हैं। नये किले में नागपुरी फाटक बहुत सुन्दर है। कहते हैं कि पलामू के सबसे शक्तिशाली राजा मेदिनी राय बहुत व्यय करके छोटा नागपुर के महराज के महल का विध्वंस करने

के बाद इस फाटक को वहां से यहां लाये थे। लेकिन जिस तरफ यह फाटक लगाया गया उसे अशुभ समझकर पीछे ईंट से बन्द कर दिया गया। पर अब इसे सुरक्षित रखने के लिए खुलवा दिया गया है।

सन् १९०३-४ के पुरातत्व-विवरण में लिखा है कि पलामू के दोनों किले जंगल के अन्दर पास ही हैं। यद्यपि इनमें से एक को पुराना और दूसरे को नया किला कहा जाता है, परन्तु देखने में दोनों एक ही समय के बने हुए प्रतीत होते हैं। किले के भवन और दीवार की बनावट रोहतासगढ़ और शेरगढ़ के किले इतनी अधिक मिलती-जुलती है कि आसानी से इसे एक ही काल का कहा जा सकता है। ये मुगलकाल के बने हैं। पुराना किला आयताकार है और वह एक मील के घेरे में बना है किला क्रमशः ऊँचे बने हुए टीले पर बना हुआ है। किले की उँची जगह और नीची जगह के बीच एक दीवार है जिसके बीच एक फाटक है। उसके सामने एक कुंआ है जिसके नीचे एक सुरंग गई है। किले की दीवार पत्थर की बनी है, जो कहीं-कहीं ८ फीट तक मोटी है। किले के चारों फाटक बड़े मजबूत और सुरक्षित हैं और प्रत्येक के ऊपर निगरानी के लिए बुर्ज बने हैं। किले के भीतर चार दो मंजिले महल और एक मस्जिद के भग्नावशेष हैं। मकानों की दीवारें प्लास्टर की हुई हैं। उन पर जहाँ-तहाँ चित्रकारी की गई अब भी स्पष्ट परिलक्षित होती है यहाँ बौद्ध और हिन्दू देवी-देवताओं से सम्बन्धित मूर्तियाँ मिलीं, पर मन्दिरों या चैत्यों के अवशेष कहीं दृष्टि गोचर नहीं हुए।

नया किला एक त्रिभूजाकार पहाड़ी ढलवान पर बना है यहां वर्गाकार में बनी हुई किले की दोहरी दीवारें हैं। भीतरीं दीवार पहाड़ी की चोटी को घेरती है और बाहरी दीवारें उससे कुछ नीचे हैं। यहां की दीवारें भी ठीक वैसी ही हैं जैसी पुरानी किले की हैं। बाहरी दीवार १८ फीट मोटी है।

किले के भीतर कोई मकान नहीं है। किले की दीवार से लगे ही कुछ मकान हैं जो कहीं-कहीं कई मंजिले भी हैं। इस किले की सबसे आकर्षक वस्तु पत्थर को खोदकर बनायी गई १५ फीट ऊँची खिड़की है। रोहतासगढ़ या शेरगढ़ में ऐसी कोई चीज नहीं है। ऐसी ही एक और टूटी-फूटी खिड़की पास में पड़ी है।

चैनपुर

चैनपुर डाल्टेनगंज से २ मील दक्षिण-पश्चिम है। यहा एक पुराने किले के भग्नावशेष हैं। यहाँ चेरों राजाओं के दीवान के वंशज रहते थे। इस घराने के लोग ठाकुराय कहलाते थे।

देवगन

यह स्थान किले के उत्तर-पूर्वी विभाग में है। यहाँ भी चेरों राजा के द्वारा बनवाये गये किले के भग्नावशेष हैं। कहते हैं कि किसी जमाने में यह एक उन्नत शहर था, जहाँ २२ सड़कें और २२ बाजार थे।

डाल्टेनगंज

डाल्टेनगंच शहर को ही डाल्टेनगंज पलामू का जिला मुख्यालय होने का गौरव प्राप्त है। १६८१ ई० में छोटा-नागपुर के कमिश्नर कर्नल डाल्टन ने इसे बसाया इसलिए इसका यह नाम पड़ा।

अलीनगर

जिले के उत्तर-पूरब कोने में यह गाँव हुसैनाबाद से ५ मील पूरब है। यहाँ एक छोटा किला है। लोग इसे रोहिल्ला किला कहते हैं और इसे मुसफ्फी खाँ का बनाया बताते हैं। जिसका वास्तविक नाम मुजफ्फर खाँ समझा जाता है। किला एक छोटी पहाड़ी के ऊपर आयताकार में है। प्रत्येक कोने पर एक वर्गाकार कमरा है। किले की दीवार पत्थर-ईंट की बनी है आँगन में एक वर्गाकार कुआँ है। पहाड़ी की पूरबी ढाल पर जिसके नीचे एक सुरंग गयी है। किला अब टूटी-फूटी हालत में है।

●